IJCRM

International Journal of Contemporary Research In Multidisciplinary

Research Article

प्रेमचन्द का दलित विषयक चिन्तन :संदर्भ और परिप्रेक्ष्य

प्रो दीपक प्रकाश त्यागी

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author: * प्रो दीपक प्रकाश त्यागी

DOI: https://doi.org/10.5281/zenodo.21407344

सारांश

यह शोधपत्र प्रेमचन्द के दलित विमर्श तथा उनके सामाजिक, सांस्कृतिक और वैचारिक दृष्टिकोण का विश्लेषण प्रस्तुत करता है। अध्ययन में यह स्पष्ट किया गया है कि प्रेमचन्द ने अपने साहित्य में दलित, वंचित एवं शोषित वर्गों की समस्याओं, पीड़ा और संघर्ष को अत्यंत संवेदनशीलता तथा यथार्थवादी दृष्टि से अभिव्यक्त किया। यद्यपि कुछ दलित विचारकों एवं आलोचकों ने प्रेमचन्द को दलित चेतना से पृथक तथा सवर्ण मानसिकता का प्रतिनिधि माना है, तथापि उनके साहित्य और वैचारिक लेखन का गहन अध्ययन यह प्रमाणित करता है कि वे जाति-आधारित शोषण, अस्पृश्यता, सामंतवाद और ब्राह्मणवादी व्यवस्था के प्रखर विरोधी थे। प्रेमचन्द ने दलित प्रश्न को केवल धार्मिक या सामाजिक समस्या न मानकर राष्ट्रीय, आर्थिक और मानवीय अधिकारों के प्रश्न के रूप में देखा। उनके साहित्य में दलित पात्र केवल करुणा के पात्र नहीं हैं, बल्कि संघर्ष, प्रतिरोध और आत्मसम्मान के प्रतीक भी हैं। अध्ययन यह निष्कर्ष प्रस्तुत करता है कि प्रेमचन्द का दलित विमर्श न तो केवल गांधीवादी है और न ही पूर्णतः अम्बेडकरवादी, बल्कि यह एक व्यापक मानवतावादी, प्रगतिशील और सामाजिक न्याय पर आधारित दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है, जो आज भी भारतीय समाज और दलित विमर्श के लिए प्रासंगिक बना हुआ है।

Manuscript Information

- **ISSN No:** 2583-7397
- **Received:** 07-11-2024
- **Accepted:** 27-12-2024
- **Published:** 30-12-2024
- **IJCRM:**3(6); 2024: 301-310
- **©2024, All Rights Reserved**
- **Plagiarism Checked:** Yes
- **Peer Review Process:** Yes

How to Cite this Manuscript

प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. प्रेमचन्द का दलित विषयक चिन्तन :संदर्भ और परिप्रेक्ष्य. International Journal of Contemporary Research in Multidisciplinary.2024; 3(6): 301-310.

मुख्य शब्द: प्रेमचन्द, दलित विमर्श, अस्पृश्यता, सामाजिक न्याय, अम्बेडकर, गांधीवाद, ब्राह्मणवाद, जाति व्यवस्था, मानवतावाद, सामाजिक परिवर्तन।

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

प्रस्तावना

यद्यपि की दलित विमर्श रचना-आलोचना का महत्त्वपूर्ण पहलू है, फिर भी इसकी जरूरत, भाषा, शिल्प प्रामाणिकता, स्वानुभूति-सहानुभूति को लेकर आज भी निरन्तर आरोप-प्रत्यारोप की स्थिति दिखाई देती है। एक वर्ग ऐसा है जो सिर्फ दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य-विचार को ही दलित साहित्य मानता है और गैर दलितों द्वारा लिखे गए साहित्य को शंका की दृष्टि से देखता है। यद्यपि कि प्रेमचन्द ने न केवल दलितों-बंचितों के प्रति किये गये अन्याय, अत्याचार को पूरी बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया, बल्कि इस वर्ग को जाग्रत भी किया, फिर भी प्रेमचन्द शक के दायरे में हैं। इतना ही नहीं रंगभूमि को जिसमें दलित नायक है उसको जलाया गया एवं मुद्राराक्षसी आलोचकों ने तो रंगभूमि दहन का समर्थन भी किया एवं प्रेमचन्द का कुपाठ भी किया। धर्मवीर ने उन्हें 'सामंत का मुंशी' कहा एवं 'लिजलिजा चाकर' भी कहा गया। डॉ. धर्मवीर ने प्रेमचन्द के लेखन में जारसत्ता की तलाश की एवं प्रेमचन्द को दलित परम्परा से बाहर माना। उनका कथन है, 'दलितों का लिखा हुआ साहित्य प्रेमचन्द के साहित्य की काट है, उस पर रोक है, उसका क्रमिक विकास नहीं। दलित साहित्य जिस जगह पर जन्म लेता है, द्विज साहित्य उस जगह पर मरने तक भी नहीं पहुँच सकता।'1

धर्मवीर के इस अध्ययन एवं रंगभूमि विवाद पर तीव्र प्रतिक्रिया हुई, किन्तु इसका एक अच्छा असर यह हुआ कि प्रेमचन्द की दलित दृष्टि एवं उनकी समाजशास्त्रीय मान्यताओं की परख के बहाने उनके साहित्य का पुनर्मूल्यांकन हुआ, इससे हिन्दी आलोचना को भी एक नयी दृष्टि मिली और प्रकारान्तर से दलित आन्दोलन भी वैचारिक रूप से समृद्ध हुआ। रंगभूमि दहन पर दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम की टिप्पणी गौरतलब है, 'वस्तुतः 'रंगभूमि' का दहन 'हंस' के सम्पादक राजेन्द्र यादव और 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' के अध्यक्ष डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के बीच द्वन्द का परिणाम था। राजेन्द्र यादव सोहनपाल सुमनाक्षर को साहित्यकार नहीं मानते और सुमनाक्षर राजेन्द्र यादव को दलित साहित्य के तवे पर रोटी सेंकने वाला या दलित साहित्य के नाम पर राजनीति करने वाला मानते हैं, पक्षधर नहीं। यह द्वन्द कई अवसरों पर मंचों से सामने आया है। इसी द्वन्द के कारण डॉ. श्यौराज सिंह 'बेचैन' के अतिथि सम्पादन में प्रकाशित हंस के 'सत्ता विमर्श और दलित' अंक में 'बेचैन' द्वारा लिए गए सोहनपाल सुमनाक्षर के साक्षात्कार को बेचैन जी की इच्छा के बावजूद प्रकाशित नहीं किया गया, ...सोहनपाल सुमनाक्षर पर राजेन्द्र यादव के इस घृणा या उपेक्षा भाव की तीव्र प्रतिक्रिया हुई। चूँकि हंस प्रेमचन्द द्वारा संस्थापित पत्रिका है और एक लम्बे समय से राजेन्द्र यादव उसका सम्पादन-प्रकाशन कर रहे हैं। इसलिए प्रेमचन्द को निशाना बनाया और प्रेमचन्द के जन्मदिन के अवसर पर जब राजेन्द्र प्रसाद भवन में 'हंस संगोष्ठी' चल रही थी, सुमनाक्षर द्वारा समर्थकों सहित प्रेमचन्द के उपन्यास 'रंगभूमि' का दहन किया गया।' स्पष्ट है कि रंगभूमि दहन के पीछे व्यक्तिगत पूर्वग्रह की भूमिका ज्यादा है साहित्यिक कारण कम है, इसे दलितों-गैर दलितों दोनों ने ही स्वीकार किया। कंवल भारती और सूरजपाल चौहान जैसे दलित लेखक और विचारक जहाँ प्रेमचन्द के पक्ष में खड़े हैं, वहीं श्यौराज सिंह बेचैन और मोहनदास नैमिशराय आदि धर्मवीर के विचार के साथ हैं। ओम प्रकाश बाल्मीकि एवं जयप्रकाश कर्दम जैसे दलित लेखक प्रेमचन्द की भूमिका को स्वीकार करते हुए भी कुछ प्रश्नों पर असहमत हैं। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन लिखते हैं कि, 'एक दलित लेखक के रूप में प्रेमचन्द ब्राह्मणवादी मूल्यों के चालक और प्रबल गांधीवादी लगते हैं। प्रेमचन्द ने अपनी कहानियों में चमारों की दुर्गति की ओर गलत चित्रण द्वारा पाठकों को नकारात्मक राय कायम करने का आधार दिया।'[2]

मोहनदास नैमिशराय भी प्रश्न उठाते हैं, 'क्या प्रेमचन्द दलित चेतना के सूत्रधार थे?और इस प्रश्न पर बहस हो सकती है,किन्तु दलित चेतना की अवधारणा इतनी सुपरिभाषित है कि इससे प्रेमचन्द को जोड़ पाना सम्भव नहीं है। वह जन्मना कायस्थ थे और दलित इसकी अनदेखी नहीं कर सकता है। इतना ही नहीं, उनका यह भी कहना है कि 'अम्बेडकर के महाड़ आन्दोलन के दौरान 'मनुस्मृति' जलाये जाने की घटना पर प्रेमचन्द चुप्पी साध लेते हैं।'[3] मुद्राराक्षस ने भी प्रेमचन्द का कुपाठ किया एवं यह स्थापना दिया कि 'प्रेमचन्द सवर्ण मानसिकता से ग्रस्त थे।' इस पर वीरेन्द्र यादव की टिप्पणी गौरतलब है, 'यह अजब त्रासद विडम्बना है कि जिन प्रेमचन्द को दलित पक्षधरता के कारण अपने जीवन काल में 'ब्राह्मणद्वेषी' व 'हिन्दूद्रोही' कहा गया था, आज उनकी मृत्यु के सात दशकों के बाद दलितों के ही एक खेमे द्वारा उनके उपन्यास 'रंगभूमि' को जलाने का दुस्साहस किया गया है और इस 'दिव्य दाह' की पुरोहिताई की हड़बड़ी में दलितवाद और गैरदलित सिद्धान्तकार मुद्राराक्षस ने तो कुछ मौलिक घोषणाएँ कर डाली। प्रकारान्तर से उनके निष्कर्ष हैं कि प्रेमचन्द वर्णाश्रमी व्यवस्था, बालिका विवाह और नाजी समर्थक होने के साथ-साथ दलित विरोधी भी थे।'[4] मुद्राराक्षस का बयान पूर्वग्रह से मुक्त, अवसरवादी एवं साहित्यहीन है क्योंकि प्रेमचन्द का महत्त्व यह है कि वे पहले ऐसे लेखक हैं जो दलित को नायकत्व देते हैं एवं उनकी चिन्ताओं को साहित्य की चिन्ताओं से जोड़ते हैं,उनके संघर्ष को अपनी रचना का विषय बनाते हैं तथा सभी प्रतिरोधी सत्ताओं को प्रश्नांकित करते हैं। जहाँ तक प्रेमचन्द के अम्बेडकर विरोधी होने का प्रश्न है, वह भी निरर्थक है। प्रेमचन्द ने अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों में अम्बेडकर को जगह-जगह रेखांकित किया है।

उदाहरण देखें—

'हमें विश्वास है कि डॉ. अम्बेडकर और मि0 श्रीनिवासन भी राष्ट्र की इस याचना को अस्वीकार न करेंगे।'[5]

"डॉ. अम्बेडकर ने महात्मा जी से इस विषय में मतभेद प्रकट करते हुए कहा है कि अछूतों को मन्दिर प्रवेश की उतनी जरूरत नहीं है जितनी इस बात की कि साधारण हिन्दू उनसे सज्जनता का व्यवहार करें और उन्हें अपने बराबर समझें।"[6]

पहली टिप्पणी में प्रेमचन्द गाँधी जी की प्राणरक्षा का अनुरोध कर रहे हैं, तो दूसरी टिप्पणी में अम्बेडकर से मतभेद प्रकट करते हुए भी दलित जीवन की त्रासदी को रेखांकित कर रहे हैं, इसलिए यह कहना कि अम्बेडकर से उनका संवाद नहीं है, निरर्थक है। इतना ही नहीं 'पूना पैक्ट' के अवसर पर वे हंस के मुख पृष्ठ पर अम्बेडकर का चित्र भी छापते हैं। ऐसे में मुद्राराक्षस जैसे अनेक आलोचकों की टिप्पणी प्रतिगामी एवं दकियानूसी है। इसका एक अन्य प्रमाण मुद्राराक्षस का यह निष्कर्ष भी है, जो वह प्रेमचन्द के वक्तव्य से निकालते हैं। वह यह है—'वे (प्रेमचन्द) मानते हैं कि शूद्र में गन्दी आदतें होती हैं, वे गन्दा काम करते हैं यानी शूद्र गन्दा काम अपनी आदत के कारण करता है। बस्ती में मरे जानवर की सफाई करता है, पाखाना उठाता है, यह सब इसलिए

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कि वह स्वभाव और चरित्र से गन्दा होता है। ब्राह्मण पवित्र आदतों वाले होते हैं, इसलिए पाखाना नहीं उठाते।' ये निष्कर्ष अश्लील, साहित्यहीन, शरारत से भरे हुए एवं दलितों में नफरत पैदा करने वाले हैं क्योंकि प्रेमचन्द का सम्पूर्ण जीवन ब्राह्मणवादी सत्ता एवं इसे पल्लवित-पुष्पित करने वाली सत्ताओं के खिलाफ ही रहा है। इसीलिए ये सत्ताएं प्रेमचन्द को 'ब्राह्मणद्रोही' मानती रही हैं। प्रेमचन्द के उस कथन को देखिए, जिसका कुपाठ मुद्राराक्षसी आलोचक करते रहे हैं।'[7]

दरअसल प्रेमचन्द की मुख्य चिन्ता गाँधी के प्राणरक्षा की थी, क्योंकि वे तत्कालीन स्वाधीता आन्दोलन के नायक थे और प्रेमचन्द अछूतों को हिन्दुओं से पृथक मानने के पक्षधर भी नहीं थे, वे अपने प्रारम्भिक दौर में हिन्दू धर्म में ही आमूल-चूल परिवर्तन के पक्षधर रहे हैं। 8 जनवरी 1934 के 'जागरण' में 'क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं' में वे लिखते हैं कि 'राष्ट्रीयता की पहली शर्त वर्ण व्यवस्था, ऊँच-नीच के भेद और धार्मिक पाखंड की जड़ खोदना है।'[8] क्योंकि 'हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि उस सामाजिक जुए से भी—इस पाखण्डी (ब्राह्मणवादी) जुए से भी जो विदेशी शासन से कहीं घातक है।'[9] जाहिर है कि प्रेमचन्द गाँधी के प्राणरक्षा की प्रार्थना करते हुए भी गाँधीवादी नहीं है, क्योंकि प्रेमचन्द के लिए स्वाधीनता का जो अर्थ है वह पहले सामाजिक-सांस्कृतिक है बाद में राजनीतिक है। इसीलिए वे सामंतवादी, जातिवादी सत्ताओं से भी टकराते हैं। कंवल भारती ने स्वीकार किया है, 'प्रेमचन्द जिस प्रगतिशीलता को लेकर चल रहे थे, वह भले ही अम्बेडकरवादी न हो, पर उसके निकट जरूर है।'[10] वीरेन्द्र यादव की टिप्पणी महत्त्वपूर्ण है, 'प्रेमचन्द के साहित्य में अम्बेडकर की माँग और उन्हें गाँधीवाद की सीमाओं में कैद सिद्ध करना अपने बौद्धिक हठ का परिचय देना है। कारण यह है कि प्रेमचन्द के जीवन काल में अम्बेडकरवाद और गांधीवाद दोनों ही निर्माण की प्रक्रिया में थे। प्रेमचन्द उसके उपजीव्य न होकर इनसे लगातार क्रिया-प्रतिक्रिया करते थे। ..... प्रेमचन्द के साहित्यिक व वैचारिक लेखन में अम्बेडकरवाद की माँग कबीर में मार्क्सवाद की माँग सरीखा है। गाँधी और अम्बेडकर से प्रेमचन्द को परिभाषित करना प्रेमचन्द को सीमित करना है।'[11]

वे आज़ादी, उपनिवेशवाद से मुक्ति के आन्दोलन में गाँधी की सक्रिय उपस्थिति के स्वरूप, व्यापक प्रभाव, नेतृत्वकारी भूमिका, त्यागपूर्ण जीवन से हृदय के स्तर पर प्रभावित हैं, अभिभूत हैं, किन्तु वे गाँधी के आर्थिक चिन्तन एवं धार्मिक विश्वासों से असहमत ही नहीं हैं, बल्कि उनसे भिन्न राय रखते हैं। यह भी सच है कि सम्पूर्ण आधुनिक भारतीय साहित्य में वर्णाश्रमवादी व्यवस्था एवं ब्राह्मणवादी कुलीनताबाद पर जितना आक्रमण प्रेमचन्द करते हैं, वह उस समय के किसी भी लेखक में नहीं मिलता। अम्बेडकर की पहली प्रभावी, आन्दोलनकारी एवं ध्यानाकर्षण करने वाली उपस्थिति राष्ट्रीय फलक पर 1927 में दिखाई देती है, जहाँ वे मनुस्मृति का दहन करते हैं। प्रेमचन्द किसी कृति का दहन आग से नहीं विचारों से करते हैं, रचनात्मक स्तर पर दलित को नायकत्व देकर करते हैं। प्रेमचन्द 1925 में दलित पात्र सूरदास को उपन्यास का नायक बनाते हैं एवं 1927 में 'मन्दिर' कहानी के मुख्यपात्र सुखिया, जो दलित जाति का है, उसके द्वारा दलित पीड़ा की आक्रोश से भरी हुई अभिव्यक्ति कराते हैं। सुखिया कहता है, 'तो क्या भगवान ने चमारों को नहीं सिरजा है? चमारों का भगवान कोई और है? .... मेरे छू लेने से ठाकुर को छूत लग गयी। पारस को छूकर लोहा सोना हो जाता है, पारस लोहा नहीं हो सकता? मेरे छूने से ठाकुर जी अपवित्र हो जाएंगे। मुझे बनाया तो छूत नहीं लगी। लो अब ठाकुर जी को छूने नहीं आऊँगी।' सुखिया का यह प्रतिरोध 1927 में ही प्रेमचन्द के हाथों दिखाई दे रहा है, जबकि अम्बेडकर 1935 में हिन्दू धर्म का तिरस्कार करके बौद्ध धर्म ग्रहण करते हैं। ऐसे में प्रेमचन्द का चिन्तन न तो गांधी का अनुवर्ती है और न ही अम्बेडकर के चिन्तन से निचले दर्जे का है बल्कि कहीं-कहीं उनका सहचर दिखाई देता है। गांधी जी वर्णाश्रमी व्यवस्था के कायल हैं, किन्तु प्रेमचन्द नहीं। 'प्रेमचन्द : घर में' संग्रहीत पत्नी शिवरानी देवी से उनका

संवाद देखिए—

"प्रेमचन्द—'भगवान मन का भूत है, जो इंसान को कमजोर कर देता है। स्वावलम्बी मनुष्य ही की दुनिया है। अन्धविश्वास में पड़ने से तो रही-सही अक्ल भी मारी जाती है।'

"शिवरानी—'गांधीजी तो दिन-रात 'ईश्वर-ईश्वर' चिल्लाते रहते हैं।'

"प्रेमचन्द—'वह एक प्रतीक भर है। वह देख रहे हैं कि जनता अभी बहुत सचेत नहीं है और फिर जो जनता सदियों से भगवान पर विश्वास किए चली आ रही है, वह एकाएक अपने विचार बदल सकती है? अगर एकाएक जनता को कोई भगवान से अलग करना चाहे तो सम्भव भी नहीं। इसी से वे भी शायद भगवान का ही सहारा लेकर चल रहे हैं।'

'शिवरानी—'आप भलें न मानें, दुनिया थोड़े ही नास्तिक हो सकती है?'

"प्रेमचन्द—'मेरा कहना झूठ नहीं है। तुम सच मानो जो भी आज धर्म के नाम पर हो रहा है सब अन्धविश्वास है। यह सब मूर्खों को बहकाने के तरीके हैं। तुम खुद सोच सकती हो यह सब स्त्रियों पर मायाजाल चलता है। इसी का नाम अन्धविश्वास है।"

1928 में हुए इस संवाद के एक वर्ष के भीतर ही 1929 की होली के अवसर पर प्रेमचन्द ने यहाँ तक कह डाला कि 'ऐसे तंग धर्म में रहना भी नहीं चाहिए।' यह प्रेमचन्द का साहस भी है और उनकी सामाजिक दृष्टि भी। यह स्मरणीय एवं रेखांकित करने योग्य है कि प्रेमचन्द की यह टिप्पणी अम्बेडकर द्वारा हिन्दू धर्म छोड़ने की घोषणा (1935) के पूर्व की है और लगभग इन्हीं दिनों ऐसी ही मन:स्थिति में उन्होंने 'गोदान' की सिलिया व पंडित मातादीन का वह प्रसंग भी लिखा था जिसमें हरखू के साथी पंडित मातादीन का जनेऊ तोड़कर मुँह में बलपूर्वक हड्डी का टुकड़ा डाल देते हैं। 'गोदान' के इस प्रसंग में 1927 के महाड़ आन्दोलन में अम्बेडकर द्वारा 'मनुस्मृति' जलाए जाने की अनुगूँज भी सुनी जा सकती है।

ईश्वर से दो-दो हाथ करने का यह साहस प्रेमचन्द के यहाँ सिर्फ वैचारिक प्रतिक्रिया एवं रचनात्मक स्तर तक सीमित न होकर घर-परिवार और जीवन में भी दिखाई देता है। बेटी के विवाह के अवसर पर उनके आचरण के बारे में शिवरानी देवी ने कुछ यूँ लिखा है—

"बारात जनवासे गयी। मैंं उसके बाद बोली—'द्वार पूजा आपको करनी चाहिए थी।'

"आप (प्रेमचंद) बोले—'मुझसे ये रस्में नहीं होंगी।'

"मैं बोली—'अभी कन्यादान तो आपको करना ही होगा।'

"आप बोले—'कन्यादान कैसा?' बेज़ान चीज़ दान में दी जाती है। ....

फिर लड़की का दान कैसा? यह मुझे पसंद नहीं।'

"मैं बोली—'इसे करना ही होगा।'

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

"आप बोले—'तो फिर मैं अपनी लड़की को दान दूँ? यह मैं नहीं कर सकता।'
"मैं बोली—'बच्चों की सी बात न कीजिए। कन्यादान होता है कि नहीं।'
"तुमको करना है करो। मैं नहीं करूँगा। आखिर किसी तरह मंडप में आए और मैंने ही कन्यादान किया। वे बैठे रहे।" (प्रेमचन्द घर में, पृ. 127)

प्रेमचन्द सात्विक और शीलवान हैं,उनमें न तो वैचारिक दुराग्रह है और नही कट्टरता हैं, गांधी जी की तरह ही बल्कि अनेक अवसरों पर गांधी से आगे जाकर धर्मान्धिता पर आघात भी करते हैं। 5 अक्टूबर 1932 में प्रकाशित जागरण के सम्पादकीय 'काशी का कलंक' में उनका कथन है, 'इस समय जबकि सारे देश में अछूतों को अपनाने और गले लगाने की धूम मच रही है, तब वे लोग मुश्किल से काशी में ही कुल सौ के करीब हैं—बन्धु नक्कारखाने में तूती की आवाज सुनने का हौसला बांधे हुए हैं, वे अछूतों को हिन्दू मानते हैं—बंधु और वात्सल्यास्पद कहते हैं, मगर कोई सामाजिक अधिकार नहीं देना चाहते, सदा उन्हें दलित और पतित ही बनाये रखना चाहते हैं।' प्रेमचन्द इन आडम्बरवादियों, शास्त्रोपजीवियों के खिलाफ हैं। वे इसी सम्पादकीय में लिखते हैं कि 'जो लोग अछूतों को हिन्दू बनाये रखते हैं और इसी में हिन्दू-जाति का सच्चा कल्याण समझते हैं, वे प्रतिज्ञापूर्वक अछूतों के लिए अलग मन्दिर बनावें और धर्म प्राण पंडे-पुजारियों को पैसे और दक्षिणा देकर अपमान खरीदने से बचे रहें। यदि विश्वनाथ जी का मन्दिर अछूतों के लिए नहीं खुलेगा, तो अछूत भाइयों के साथ मिलकर करोड़ों हिन्दू इसी काशी में दूसरे मन्दिर का निर्माण करके उसी में विश्वनाथ का आवाहन-पूजन करेंगे, क्योंकि विश्वनाथ किसी एक जाति सम्प्रदाय के देवता नहीं है, वह तो प्राणी मात्र के पिता और नाथ हैं, उन पर सबका दखल-कब्जा बराबर-बराबर है।'[12] किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रेमचन्द में गांधी जी को लेकर द्वन्द नहीं था। वे एक ओर गांधीवादी दर्शन के प्रति लगाव रखते हैं तो दूसरी तरफ कभी कभी यथार्थ की चीत्कार करती तस्वीर के समाने गांधीवाद को अपर्याप्त भी मानते हैं और जहाँ वे इनमें टकराव देखते हैं, वहाँ वे गांधीवाद का रास्ता छोड़कर यथार्थ की अपनी चिरपरिचित जमीन पर आ जाते हैं। 'कलम का सिपाही' में अमृतराय ने इस द्वन्द की ओर इशारा किया है—

"गांधीजी के लिए प्रेमचन्द के मन में गहरी भक्ति है, अचल निष्ठा है कर्मपथ पर उनके नेतृत्व में इतनी कि मुंशीजी कभी-कभी संशय में पड़ जाते हैं—प्रमाण किसे मानें। जीवन के प्रति अपने अनुभव और ज्ञान को या गांधी को, जबर्दस्त रस्साकशी होती है। आखिरकार समझौता हो जाता है। जीवन भी रहेगा, गांधी भी रहेंगे। कठोर वास्तविकता की नंगी खुरदरी जमीन भी रहेगी और उस पर गांधी दर्शन का चँदोवा भी तना रहेगा। जमीन के खुरदरेपन को ढँकने के लिए कालीन की तरह उसका इस्तेमाल-नहीं, यह किसी तरह मुमकिन न होगा।

"किसी पाखंडी से वह समझौता नहीं करेगा, किसी अन्याय से वह आँख नहीं चुराएगा। ज़िन्दगी की पूरी तस्वीर देगा, सच्ची तस्वीर देगा। वह उनकी प्रतिश्रुति है अपने प्रति। तत्काल कर्म की एक रूपरेखा गांधी के यहाँ मिलती है। अच्छी है, मन को भाती है और जहाँ तक अपने स्वप्न से उसका मेल खाता है गांधी के साथ या उनके पीछे चलने में कोई बुराई नहीं है। भरोसे का आदमी है। शेष के लिए मैं स्वतन्त्र हूँ। मैं अपनी राह जाऊँगा, वह अपनी राह जाएँगे।" (पृ. 213-214)

प्रेमचन्द दलितों को शेष समाज से जोड़कर देखने के पक्षधर हैं। 5 दिसमबर के 'जागरण' के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा है कि 'नागपुर में हरिजन बालकों के लिए अलग एक छात्रालय बनाया गया है। इससे तो अछूतपन मिटेगा नहीं और दृढ़ होगा। उन्हें तो साधारण छात्रालयों में बिना किसी विचार के स्थान मिलना चाहिए।'[13] इतना ही नहीं प्रेमचन्द जाति पर आधारित श्रेष्ठता ग्रंथि को बखूबी पहचान गये थे, हिन्दू समाज में शताब्दियों से फल-फूल रहे जातिवाद को भी अस्वीकार कर दिया। 'महान तप' नामक सम्पादकीय में इसीलिए उन्होंने लिखा है कि 'यह ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद हिन्दू-जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। हम यह किसी तरह नहीं भूल सकते कि हम शर्मा हैं या वर्मा, सिन्हा हैं या चौधरी, दूबे हैं या तिवारी, चौबे हैं या पांडे, दीक्षित हैं या उपाध्याय। हम आदमी पीछे हैं, चौबे या तिवारी पहले और यह प्रथा इतनी भ्रष्ट हो गई है कि आज जो निरक्षर भट्टाचार्य हैं, वह भी अपने को चतुर्वेदी या द्विवेदी लिखते जरा भी संकोच नहीं करता।'[14] इसी सम्पादकीय में वे आगे लिखते हैं कि, 'मूखों से तो नहीं पर जो पढ़े-लिखे हैं उनसे यह आशा की जाती है कि हरिजनों के साथ शिष्टता का व्यवहार करें। बड़प्पन दूसरों को नीच समझने में नहीं, सज्जनता और शिष्टता में है। हमें उन छोटे-छोटे भेद पोषक साधनों का संस्कार करना होगा, उन्हें उस अग्निकुण्ड में डालना होगा, जो महात्मा गांधी ने अपने तेज से प्रज्वलित किया है।'[15] यहाँ प्रेमचन्द महात्मा गांधी के समर्थन में हैं और उनके वहुत करीब ।

इसके पीछे मुख्य धारणा यही था कि प्रेमचन्द का वैचारिक चिन्तन स्वाधीनता आदोलन से जुड़ा है, यद्यपि कि हाशिए पर खड़ी मनुष्यता के पक्ष में वे पूरी ईमानदारी के साथ खड़े होने वाले कथाकार हैं। उनकी कथा की दुनिया उपेक्षितों, वंचितों की संघर्ष यात्रा-उत्पीड़न यात्रा से शुरू होती है। प्रेमचन्द ने न केवल दलितों के प्रति किये गये अन्याय, अत्याचार को पूरे बेबाकी के साथ प्रस्तुत किया, बल्कि उन्होंने उस समाज के भीतर दलितों के प्रति, अपृश्यों के प्रति, वंचितों के प्रति करुणा, संवेदना एवं बौद्धिक जिरह को जन्म दिया जो शोषण को अपना जातीय एवं नैतिक अधिकार माने हुए थे। अम्बेडकर जिस समय जाति अपमान की पीड़ा एवं दुःख झेल रहे थे, ठीक उसी समय प्रेमचन्द भी दलित उत्पीड़न से बेचैन थे और रचनात्मक स्तर पर सांस्कृतिक जागरण का स्वर मुखरित कर रहे थे। 1918 में लिखे 'स्वदेश का सन्देश' शीर्षक सम्पादकीय में वे लिखते हैं कि "हमारे समाज में ऊँच-नीच का विचार ज्यों का त्यों बना हुआ है। चमार अब भी अछूत हैं और डोमों को स्पर्श करना तो हमारे लिए घोर पाप है। मनुष्य की आत्मा की श्रेष्ठता, उसका गौरव हम भूल बैठे हैं।"

इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रेमचन्द ने 20वीं शताब्दी के दूसरे एवं तीसरे दशक में जो दलित मुक्ति का जागरण काल है, उसमें छूत-अछूत के मुद्दे को जिस गहरी संलग्नता, ईमानदारी एवं संवेदनधर्मिता किन्तु वैचारिक दृढ़ता के साथ उद्घाटित किया, वह दुर्लभ है। प्रेमचन्द यह वास्तविकता पूरे यथार्थ के साथ स्वीकार करते हैं कि यह समस्या हिन्दू समाज के भीतर से निकली समस्या है। अतः जब तक इस समस्या का समाधान नहीं हो जाता, तब तक राष्ट्रीय मुक्ति अधूरी है। उन्होंने 26 अक्टूबर, 1932 को अपने लेख 'हमारा कर्तव्य' में लिखा है—हमारा कर्तव्य तभी पूरा होगा जब हम देश के वर्तमान अछूतपन को जड़मूल

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

से नष्ट कर देंगे। यदि हम उस पवित्रात्मा से, महान आत्मा से सच्ची श्रद्धा रखते हैं, भक्ति रखते हैं, स्नेह करते हैं, तो हमारा प्रधान कर्त्तव्य है कि हम उसके हृदय की माँगों को पूरा करें।' प्रेमचन्द गांधीवादी फार्मूले में विश्वास ही नहीं करते बल्कि प्रभावित भी हैं। गांधी जी द्वारा यरवदा जेल में किए गए आमरण अनशन पर प्रेमचन्द की टिप्पणी गौरतलब है— 'उस महान आत्मा के अनशन व्रत ने, उसकी तपस्या ने, केवल सात दिनों में यह दिखला दिया कि वास्तव में तपस्या कितनी बलवती होती है। उस महान आत्मा की तपस्या ने ब्रिटेन के महान राजनीतिज्ञों के द्वारा तैयार की हुई उस सुदृढ़ दीवार को, जो हिन्दू अछूतों को अलग करने के लिए बड़े गहन कौटिल्य के सीमेन्ट में तैयार की गयी थी, विध्वस्त कर दिया! छूत-अछूत का वह मसला, जो आगामी गृह युद्ध का संकेत कर रहा था और इसी के लिए ब्रिटिश राजनीतिज्ञों ने जिसकी नींव को दृढ़ किया था, हल हो गया है।'[16]

इस प्रकार प्रेमचन्द धर्म के भीतर ही समाधान की तलाश में थे, जैसा गांधी जी मानते थे। गांधी जी की दृढ़ मान्यता है कि 'अस्पृश्यता या छुआछूत अगर हिन्दू-धर्म में हो, तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें शैतानियत भरी हुई है, धर्म नहीं। पर मेरा दृढ़ विश्वास है कि हिन्दू-धर्म में यह सब कुछ नहीं है जब तक प्रत्येक हिन्दू अपने चमार, भंगी आदि भाइयों को भी अपने सगे भाई की तरह हिन्दू न समझेंगे, तब तक मैं उन्हें हिन्दू नहीं समझूंगा। मनुष्य तिरस्कार और दया इन दो चीजों के साथ नहीं रह सकता।'[17] और प्रेमचन्द गांधी जी के इसी रास्ते पर, थोड़े समय के लिए ही सही हैं। गांधी जी के मत पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द का कथन है—'इस समय देश के प्रत्येक सच्चे हिन्दू का ध्यान केवल इसी ओर होना चाहिए कि वह जी-जान से महात्मा जी की मनोकामना की पूर्ति में अपनी शक्ति लगा दे।' किन्तु यह भी गौरतलब है कि गांधी जी ने अपना अनशन अम्बेडकर के कहने पर समाप्त किया था, ऐसे में प्रेमचन्द को अम्बेडकर की भूमिका को भी रेखांकित करना चाहिए था, किन्तु प्रेमचन्द यहां गांधीवादी दर्शन से प्रभावित हैं। प्रेमचन्द ने जागरण में 'हमारा कर्तव्य' विषयक सम्पादकीय टिप्पणी लिखकर गांधी जी को समर्थन दिया किन्तु यहां तक वे गांधीवादी हैं,अम्बेडकरवादी नहीं हैं। उन्होंने जातिप्रथा की क्रूरताओं की निन्दा की, किन्तु वर्णाश्रम धर्म के चौखटे को तोड़ने का साहस भी दिखाया है। तेज सिंह का कथन भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं है कि एक ऐसे समय में जब कट्टरता चरम पर थी प्रेमचन्द पुरोहिती, धार्मिक कठमुल्लेपन को अस्वीकार करते हुए उसकी निरर्थकता का निर्भय होकर उद्घोष करते हैं। हरिजनों के सवाल पर अथवा पृथक निर्वाचन के सवाल पर वे अंग्रेजों के विरोध में लड़ रहे गांधी के साथ हैं, किन्तु प्रेमचन्द का रास्ता गांधी से वहाँ अलग हो जाता है, जहाँ वे समाज के प्रभु वर्गों की क्रूरताओं पर उनसे सद्भावना या हृदय परिवर्तन की प्रतीक्षा नहीं करते, बल्कि वे उन पर आक्रामक भी होते हैं, गोदान का सिलिया प्रसंग इसका प्रमाण है। गांधी जी धर्म तथा समाज व्यवस्था के परम्परागत ढाँचे में हरिजनों के लिए सम्मानित स्थान चाहते थे, किन्तु प्रेमचन्द इस ढाँचे को जगह-जगह ध्वस्त भी करते हैं। यह भी सच है कि प्रेमचन्द के लिए अछूतों का प्रश्न मात्र सामाजिक-धार्मिक मोर्चे पर हल होने वाला प्रश्न नहीं है, बल्कि वे आर्थिक समस्याओं को भी महत्त्व देते हैं। प्रेमचन्द आर्थिक शोषण से भी मुक्ति के पक्ष में है। 'प्रेमचन्द ने बिना किसी लाग लपेट के जहाँ समाज तथा व्यवस्था के प्रभुओं के अमानवीय चेहरे को निर्ममता से बेनकाब करते हुए उसे धिक्कारा है वहाँ धार्मिक-सामाजिक तथा आर्थिक शोषण पर टिकी परम्परागत व्यवस्था के सारे कल-पुर्जों की घिनौनी वास्तविकता को उजागर करते हुए उसके आमूल बदलाव की माँग की है। जाति, वर्ण, धर्म तथा उसका व्यापार करने वालों के प्रति इतना गैर समझौतावादी रुख शायद ही उस युग के किसी दूसरे लेखक या राजनेता का रहा हो और उसकी अमानवीयता का पर्दाफाश भी इतनी निर्भीकता तथा आन्तरिक ऊर्जा से, शायद ही किसी ने किया हो।'[18]

प्रेमचन्द की यह विशिष्टता है कि उन्होंने समाज के निचले पायदान पर खड़े मनुष्य को पूरी मानवीय संवेदना के साथ उसकी वस्तुगत सच्चाई के साथ अपने विचार एवं संवेदना का विषय बनाया है। वे अभिशप्त एवं शोषित मनुष्यता के पैरोकार के रूप में दिखाई देते हैं। यद्यपि कि उनके वर्णित दलित पात्र अधिकतर बर्बाद होते हुए दिखाई देते हैं, इसके पीछे मुख्य तर्क यह है कि प्रेमचन्द यथार्थवादी रचनाकार होने के कारण यह प्रतिपादित करना चाहते हैं कि व्यवस्था के क्रूर पंजे एवं संस्कारों के शिकंजे इतने मजबूत हैं कि उसे आसानी से मरोड़ा नहीं जा सकता। यही उस युग की सच्चाई भी थी। शिव कुमार मिश्र का कथन बहुत महत्वपूर्ण है, 'जो कुछ उस युग सदर्भ में संभव नहीं था उसे चित्रित कर प्रेमचन्द एक सदिच्छाबादी-यूटोपियन लेखक भले बन जाते, यथार्थनिष्ठ रचनाकार नहीं रह सकते थे। अपनी सर्जना के माध्यम से प्रेमचन्द वह जनमत पैदा करने की कोशिश जरूर करते हैं जो दलितों की मुक्तकामी आकांक्षा को एक अहम सवाल के रूप में हमारी चिन्ता एवं सरोकारों के साथ जोड़ सके।' सरस्वती में छपी हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' (1914) पढ़ने के बाद हम कह सकते हैं कि प्रेमचन्द का उपर्युक्त कथन हाशिए पर खड़ी एक पूरी मानवता के निर्मम, करुण यथार्थ को उद्घाटित करता है। हीरा डोम ने व्यथा से भर कर लिखा था—

"हमनी के इनरा के निगिचे न जाइ ले जा,
पाके में से भरि-भरि पिअतानी पानी।
पनही से पिटि पिटि हाथ गोड़ तुरि दैलै,
हमनी के एतनी काही के हलकानी।। "

प्रेमचन्द की कहानी 'ठाकुर का कुआँ' (1932) का जोखू हीरा डोम की वास्तविकता को पुनः दुहराता है। उसका चरित्र विभेद, बहिष्कार, अस्पृश्यता के विरुद्ध सन्नाटे से भरी ऐसी आवाज है जो सभ्य समाज के लिए अभिशाप है। इस आवाज़ के माध्यम से प्रेमचन्द अमानवीयता को उद्घाटित करते हैं। उसके खिलाफ मनुष्य को चेतनावान बनाते हैं। प्रेमचन्द की इस कहानी की गंगी जान जोखिम में डालकर ठाकुर के कुएँ का पानी लेने गयी, गंगी झुकी कि घड़े को पकड़कर जगत पर रखे कि एकाएक ठाकुर साहब का दवाजा खुल गया। 'शेर का मुँह इससे अधिक भयानक नहीं होगा।' कहना न होगा कि प्रेमचन्द का दलित विमर्श न तो फैशन है और न ही सत्ता प्राप्ति का माध्यम। प्रेमचन्द का दलित चिन्तन राजनैतिक जरूरत के अनुसार कुछ गिनी-चुनी अछूत जातियों तक सीमित नहीं है—'जो भी रौंदा, कुचला और दला गया है, उनकी नजर में दलित है।'[19] यही वजह है कि प्रेमचन्द के कथा संसार एवं चिन्तन-जगत् में जो चरित्र है उनमें भंगी,, दुसाध, मुसहर, पिछड़ी जातियों के व्यक्ति हैं। यहाँ न तो इकहरापन है न समस्याओं का कोई सरलीकृत फार्मूला, न उत्तेजनात्मक ग्रंथि। यहाँ शोषण और उत्पीड़न के

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

कुछ ही स्वरूपों तक सीमित रहने की वह प्रवृत्ति भी नहीं है, जो आज के दलित विमर्श में है। यह भी सही है कि प्रेमचन्द के साहित्य का दलित समाज में न तो अकेला है और न ही अन्य मोर्चों पर उदासीन। उन्होंने दलित को सम्पूर्ण विश्व और नागरिक समाज की समस्याओं के बीच रखकर देखा, क्योंकि, दलितों की मुक्ति के लिए सिर्फ वर्ण व्यवस्था से ही नहीं, सामंती व्यवस्था से भी हर स्तर पर लड़ना जरूरी था। साहित्य केवल लेखक की जाति एवं उसकी पीड़ा तक ही नहीं सिमटा, बल्कि वह अपनी पीड़ा से सभी पाठकों को न जोड़े, शेष समाज से न जोड़े तो कोई क्रान्ति भी नहीं हो सकती है और न ही वह साहित्य कहलाने का ही अधिकारी होगा। साहित्य का देशकाल एक व्यापक समाज का देश काल बने, यह साहित्य की कसौटी भी है और उसका प्रतिपाद्य भी। दलित आत्मकथाओं के साथ यही दुर्घटनाघटती दिखाई देती है। इसमें सन्देह नहीं कि दलित लेखकों की आत्मकथाओं में स्वानुभूति का प्रश्न है, वह रचना का एवं रचनाकार दोनों का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। ज्योतिबा फूले के इस कथन से भी सहमत हुआ जा सकता है, कि "गुलामी की यातना को जो सहता है, वही जानता है और जो जानता है वही पूरा सच कह सकता है।" डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने भी इसी कड़ी में कहा है, "सारी सहानुभूति, करुणा, सहृदयता और परकाया प्रवेश की कला के बावजूद गैर दलितों द्वारा दलितों के बारे में लिखे गये साहित्य में कला चाहे जितनी हो, परतु अनुभव की वह प्रामाणिकता नहीं होती जो किसी दलित द्वारा अपने समुदाय के बारे में स्वानुभूति की पुनर्रचना से उपजे साहित्य में होती है।"[20] किन्तु यह अनुभूति की प्रामाणिकता का एक पक्ष है। दूसरा पक्ष वह है, जिसे भीष्म साहनी ने रेखांकित किया था, "इसमें सन्देह नहीं कि इंसान जहाँ सहता है, वहाँ वह विद्रोह भी करता है, दोनों प्रवृत्तियाँ इंसान के स्वभाव में पायी जाती हैं, पर विद्रोह की आवाज रचना के रूपकर आये तो वह विश्वसनीय होती है, रूपकर न आए तो आरोपित होती है, बनावटी हो जाती है।" वास्तव में यही रचना के रचना होने की भी शर्त है, अन्यथा वह साहित्य नहीं होगा, नारेबाजी या प्रचार-साहित्य होगा। यहीं एक तीसरा पक्ष भी उभरता है कि दलित विमर्श को दलितवादी विमर्श बनाने से रोकने के लिए यह आवश्यक है कि इसे किसी कवच में न बन्द होने दें। वर्ण, जाति का प्रश्न महत्त्वपूर्ण है, किन्तु वर्ण, जाति के आधार पर साहित्य की प्रगतिशील चेतना को, मानवतावादी धारणा को ख़ारिज करना या सीमित करना, घेरेबन्दी करना भी एक नये प्रकार का सवर्णवाद तो है ही, दलित विमर्श को एकायामी, एकरस एवं चुनौतियों से हीन करना भी है। जहाँ तक सहानुभूति है वह कोई दोष नहीं है स्वानुभूति के लिए भी सहानुभूति आवश्यक है तथा सहानुभूति वाला तत्व ही स्वानुभूति का प्रसार करता है, अपनी चेतना को जनचेतना से एवं जनचेतना को अपनी चेतना से जोड़ता है। प्रेमचन्द एवं निराला जैसे रचनाकारों ने यही किया था। यह भी सत्य है कि इनकी रचनाओं में दलित मुखर नहीं है, प्रतिवाद नहीं करते, किन्तु इन दलितों पात्रों की आँखों में घृणा, अस्पृश्यता के बदले जुझारू एवं संघर्षशील मनुष्यता की ज्योति है, उनके भय में भी एक तरह का प्रतिवाद है, उनके मौन में भी चित्कार है, उदासी में भी दृढ़ता है और आँसू में भी आग की लपटें हैं।

प्रेमचन्द ने अपने रचनात्मक देश-काल में ब्राह्मणवाद, सामंतवाद पूँजीवाद से लोहा लिया था और आज भी अपनी रचनाओं के माध्यम से इन मनुष्य विरोधीशक्तियों से जूझ रहे हैं। उन्होंने अपनी एक महत्त्वपूर्ण टिप्पणी 'क्या हम वास्तव में राष्ट्रवादी हैं?' में इन शक्तियों के बारे में लिखा है, "हिन्दू जाति का सबसे घृणित कोढ़, सबसे लज्जाजनक कलंक यही टकेपंथी दल है जो एक विशाल जोंक की भांति उसका खून चूस रहा है' प्रेभचन्द राष्ट्र और मनुष्यता दोनों के लिए इसे हानिकारक मानते हैं।उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता की पहली शर्त है- साम्य भाव।प्रेमचन्द वर्णाश्रम व्यवस्था और पुरोहितवाद को सामाजिक वैमनस्य का मूल कारण मानतें हैं। वे विसंगतियों को उद्घाटित करते हैं। वे कहते हैं,'ब्राह्मणों को देखा है, जो जाड़ों में महीने में एक बार स्नान करते हैं। फिर भी वे पवित्र हैं, फिर भी उनके ब्राह्मणत्व में बाधा नहीं आती, किन्तु अछूत नित्य स्नान करता हो, कितना ही आचारवान हो, वह मन्दिर में नहीं जा सकता। क्या इसी नीति पर हिन्दू धर्म रह सकता है?" (विविध प्रसंग, भाग-दो, पृ. 449)

और यह भी कि

- "अछूत इसीलिए तो अछूत हैं कि वे जन समाज के स्वास्थ्य के लिए उनके घरों की सफाई करते हैं, उनकी सेवा करते हैं। उनमें और अछूतों में क्या अन्तर है? जैसे वे मनुष्य हैं, अछूत भी हैं। यदि अछूत उनके घर का मल-मूत्र साफ करते हैं, तो वे भी तो इस कार्य से वंचित नहीं हैं। वे भी तो रोज सुबह सबसे पहले यही काम करते हैं। बाल-बच्चों में घर में प्रायः सभी वर्ण की स्त्रियों को यह कर्म करना पड़ता है। रोग काल में भी मूल-मूत्र उठाने का काम प्रायः घर के लोग ही करते हैं। ..... फिर क्यों इस दुर्विचार का पोषण किया जाता है, क्यों अपने ही हाथों अपने पैरों को काटने की कोशिश की जाती है? ..... एक स्वार्थ ही इसका कारण है। ..... वे स्वार्थ के जिस सुंदर खिलौने से बच्चों की तरह खिलवाड़ कर रहे हैं, वह असल में डायनामाइट है, जो उनकी सात पुश्तों को ध्वस्त कर डालेगा।" (वही, पृ. 441)

प्रेमचन्द के लिए अछूत समस्या राष्ट्रीयता एवं स्वाधीनता की परियोजना का ही एक महत्त्वपूर्ण आयाम है, जबकि गांधी जी की दृष्टि में यह धार्मिक एवं नैतिक प्रश्न है। प्रेमचन्द का कथन है, 'हमारा स्वराज्य केवल विदेशी जुए से अपने को मुक्त करना नहीं है, बल्कि उस सामाजिक जुए से भी इस पाखंडी (ब्राह्मणवादी) जुए से भी जो विदेशी शासन से कहीं घातक है।' प्रेमचन्द की धारणा प्रगतिशील एवं मानवतावादी है, इसे न तो मार्क्सवाद के घेरे में समझा जा सकता है और न ही गांधीवादी या अम्बेडकरवादी ही समझा जा सकता है क्योंकि गांधी जी, अम्बेडकर के समकालीन प्रेमचन्द का समय भी गांधी एवं अम्बेडकर के निर्माण का समय है, उनके संघर्ष का समय है। वीरेंद्र यादव का कथन महत्त्वपूर्ण है, 'प्रेमचन्द के साहित्य में अम्बेडकर की माँग और उन्हें गांधीवाद की सीमाओं में कैद सिद्ध करना अपने बौद्धिक हठ का परिचय देना है।'[22] जहाँ तक गांधीवाद का प्रश्न है, प्रेमचन्द उसका अतिक्रमण अनेक स्थलों पर करते हैं। प्रेमचन्द धर्म, ईश्वर एवं वर्णाश्रम धर्म को लेकर आस्थावादी नहीं हैं, बल्कि वे तार्किक हैं, वैज्ञानिक दृष्टि से संचालित हैं इसीलिए इनकी चेतना आलोचनात्मक है। हंस के अक्टूबर अंक के सम्पादकीय में वे लिखते हैं कि, 'भारत का उद्धार अब इसी में है कि राष्ट्रीय धर्म के उपासक बनें, विशेष अधिकारों के लिए न लड़कर, समान अधिकारों के लिए लड़े, हिन्दू या मुसलमान, अछूत या ईसाई बनकर नहीं,

लज्जाजनक, कलंक यहीं टके-पन्थी दल हैं, जो एक विशाल जोंक की भाँति उसका खून चूस रहा है और हमारी राष्ट्रीयता के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है। राष्ट्रीयता की पहली शर्त है, समाज में साम्य भाव का दृढ़

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

होना।" यह सच है कि प्रेमचन्द गांधी जी के राष्ट्रीय आन्दोलनधर्मी नैतिक चरित्र से प्रभावित हैं और इसीलिए अनेक अवसरों पर उनके साथ खड़े हैं, किन्तु वे गांधीवादी नहीं हैं और अपनी प्रगतिशील सामाजिक चेतना के कारण हो भी नहीं सकते। तेज सिंह का कथन है—"अगर प्रेमचन्द गांधीवादी लेखक हैं तो फिर उन्हें वर्णव्यवस्था का सबसे बड़ा समर्थक, हिन्दूवादी लेखक होना चाहिए और गांधी की ही तरह यह कहना चाहिए कि वे सनातनधर्मी, वर्णवादी और परम्परावादी लेखक हैं। प्रेमचन्द ने कभी नहीं कहा और न ही कहीं लिखा है कि वे वर्ण व्यवस्था के समर्थक सनातनधर्मी लेखक हैं। तथाकथित हिन्दुओं की जातिवादी समाज व्यवस्था का विरोध करने वाले प्रेमचन्द वर्णवादी लेखक हो ही नहीं सकते। प्रेमचन्द हिन्दू हैं और इस नाते उस धर्म में भी हैं, लेकिन वे हिन्दूवादी नहीं हैं। अगर हिन्दूवाद ही हिन्दुओं का धर्म है तो प्रेमचन्द उस धर्म और उसके पाखंड और कर्मकाण्ड के खिलाफ थे। जो विद्वान लोग पूना पैक्ट के आधार पर प्रेमचन्द को गांधीवादी मान लेते हैं, वहीं विद्वान लोग उन्हें डॉ. अम्बेडकर विरोधी मानकर प्रेमचन्द के विरोध में खड़ा कर देते हैं। पूना पैक्ट पर गांधी का समर्थन करने पर प्रेमचन्द न तो गांधीवादी हो जाते हैं और न डॉ. अम्बेडकर के विरोधी। सच्चाई यह है कि पूना पैक्ट करके गांधी की जान बचाने वाले डॉ. अम्बेडकर का आभार प्रकट करने के लिए प्रेमचन्द ने 'हंस' के मुख पृष्ठ पर डॉ. अम्बेडकर का फोटो छापकर ऐसा आदर्श स्थापित किया जो आज तक किसी गैर-दलित पत्र या पत्रिका ने नहीं किया।'[21] और प्रेमचन्द ने यह साहस उस समय किया था, जब समाज जातिवादी संकीर्णतावाद से ग्रसित था एवं वर्णवादी ताकतें अम्बेडकर का विरोध घृणा की हद तक कर रही थीं। प्रेमचन्द ने ब्राह्मणवादी जातिशास्त्र का विरोध करके नयी इबारत लिख दी थी। यह कठोर सत्य है कि प्रेमचन्द अम्बेडकरवादी नहीं है, किन्तु यह कहना कि प्रेमचन्द अम्बेडकर की उपेक्षा कर रहे थे, सही नहीं है एवं ऐसे विचारों से दलित आन्दोलन की धार भी कुन्द होगी और दलित आन्दोलन की दिशाएं भी प्रभावित होंगी। प्रेमचन्द की चिन्ता में अस्पृश्य, दलित, वंचित सभी हैं और प्रेमचन्द की यह दृढ़ धारणा है कि अछूत समस्या की जड़ में वर्णाश्रम धर्म है, वर्णवादी दम्भ है इसलिए वे ब्राह्मणवाद की कठोर निन्दा तो करते ही हैं, उसे निरर्थक भी मानते हैं, प्रेमचन्द के निम्नलिखित दो कथन इसके प्रमाण हैं—

- "कहा जाता है कि अछूतों की आदतें गन्दी हैं, वे राज स्नान नहीं करते, निषिद्ध कर्म करते हैं आदि। क्या जितने सछूत हैं, वे राज स्नान करते हैं, क्या कश्मीर और अल्मोड़ा के ब्राह्मण रोज नहाते हैं? हमने इसी काशी में ऐसे भारतीय बनकर संयुक्त उन्नति की ओर अग्रसर हों, अन्यथा हिन्दू, मुसलमान, अछूत और सिक्ख सब रसातल को चले जाएँगे।' इस प्रकार अछूत समस्या प्रेमचन्द के लिए एक राष्ट्रीय समस्या, सामाजिक-सांस्कृतिक समस्या है। प्रेमचन्द इसी सम्पादकीय में लिखते हैं कि, 'हम मसजिद में जाएँ या मन्दिर में, हिन्दी पढ़ें या उर्दू, धोती बाँधे या पायजामा पहने, हम स्वाधीन हैं, लेकिन धर्म के नाम पर राष्ट्र को भिन्न-भिन्न दलों में विभक्त करना, ईश्वर और मनुष्य के सम्बन्धों को राष्ट्रीय मामलों में घसीट लाना, राष्ट्रीय भारत कभी गवारा नहीं करेगा ..... सम्पूर्ण भारत का हित एक है, उसमें कोई विभिन्नता नहीं है।'[23] प्रेमचन्द राष्ट्रीय मुक्ति आन्दोलन के रचनाकार हैं, इसलिए राष्ट्रीयता पर कोई भी आक्रमण उन्हें सह्य नहीं है, चाहे वह सम्प्रदायवाद का हो या वर्णाश्रमवाद का। गांधी जी भी इन शक्तियों को नकराते हैं, किन्तु वे अन्ततः वर्णाश्रमवादी व्यवस्था में अपनी आस्था को नहीं झुकने देते। गांधी जी ने पृथक निर्वाचन का विरोध करते हुए कहा था कि, "और अल्पसंख्यक लोग यदि पृथक्-निर्वाचन की माँग करें तो मैं कुछ हद तक उनकी बात समझ भी सकता हूँ। पर अछूतों की ओर से यह जो माँग की जा रही है उसका मुझे अत्यन्त दुख है। जिस प्रकार सिख सिख के नाते, मुसलमान मुसलमान के नाते अथवा यूरोपियंस के नाते संसार के अन्त तक रहना चाहते हैं उसी प्रकार क्या अछूत भी अनन्त काल तक अछूत ही बने रहना चाहते हैं। मैं इस बात को यहाँ स्पष्ट रूप से कह देना चाहते हैं कि यदि और लोग मेरी सहायता न करें तो भी मैं अकेला अछूतों के पृथक् निर्वाचन क्षेत्र का जी-जान से विरोध करूँगा।"[24] इतना ही नहीं 11 मार्च 1931 को भारतमंत्री, सैमुअल होर के नाम लिखे पत्र में वे पुनः कहते हैं कि '...लेकिन मैं समझता हूँ कि पृथक् निर्वाचन अछूतों के लिए भी नुकसानदेह और हिन्दू धर्म के लिए भी, शुद्ध राजनीतिक नजरिए से चाहे वह फायदेमन्द ही क्यों न साबित होता हो ... पृथक् निर्वाचन हिन्दू धर्म को तार-तार कर देगा। इन वर्गों का सवाल मेरे लिए एक नैतिक और धार्मिक सवाल है। उसके राजनीतिक पहलू का भी महत्त्व है, लेकिन नैतिक और धार्मिक मुद्दे के सामने उसका महत्त्व बहुत कम है।[25] गांधी जी के लिए पृथक निर्वाचन का सवाल नैतिक एवं धार्मिक है जबकि प्रेमचन्द के लिए पृथक निर्वाचन का मुद्दा राष्ट्रीय है एवं देखने की दृष्टि में भी राष्ट्रीयता का रंग है। 29 अगस्त 1932 के जागरण के सम्पादकीय में प्रेमचन्द ने लिखा है कि, " साम्प्रदायिक आधार ही आपत्तिजनक है। उसमें कतरब्योंत करके हम उसका रूप नहीं बदल सकते। हिन्दुओं और सिखों को दस-पाँच जगह और मिल जाने से वह कम आपत्तिजनक न रहेगा, उसका साम्प्रदायिकत्व कैसे मिटेगा? क्या हिन्दू अथवा सिक्ख आन्दोलन से? इससे तो परस्पर द्वेष की आग और भड़केगी और राष्ट्रघातक भावनाएँ और भी प्रबल होगी .... जब आनेवाली वर्षों में इसी साम्प्रदायिकता से संग्राम करना है -सहिष्णुता, विश्वास, धैर्य और सेवा के शस्त्रों से। इसी में राष्ट्र का कल्याण है।[26]

इसमें कोई दो राय नहीं कि प्रेमचन्द अछूतोद्धार के मामले में कुछ हद तक गांधीवादी फार्मूले में विश्वास करते हुए भी गांधीवादी नहीं हैं और न ही अम्बेडकर विरोधी। अछूत प्रथा पर गांधी जी की मान्यता थी कि, "मैं समझता हूँ कि अस्पृश्यता मिट जाने के बाद चारों वर्ण एक दूसरे के लिए पूरक बन जाएँगे। मैं डॉ. अम्बेडकर के इस मत से सहमत नहीं हूँ कि वर्णाश्रम धर्म नष्ट किए बिना अस्पृश्यता मिट ही नहीं सकती।'[27] प्रेमचन्द ब्राह्मणवादी व्यवस्था के मूल आधार वर्णव्यवस्था पर कठोर आघात करते हैं एवं इस व्यवस्था के प्रबल समर्थकों ब्राह्मण, पोंगा पंडित और कट्टर सनातनधर्मियों के कामों की कटु आलोचना करते हैं। गांधी जी की काशी यात्रा के अवसर पर काशी के शास्त्राभिमानी पंडितों के व्यवहार पर टिप्पणी करते हुए प्रेमचन्द ने लिखा है कि 'काशी की जनता खूब जानती है कि सनातनधर्मी और वर्णाश्रम धर्म के नाम पर होहल्ला मचाकर देश की सामाजिक जागृति और राजनीति के प्रगति में बाधा पहुँचाने ओर रोड़े अटकाने वाले काशीस्थ पंडित कितने पानी में हैं।'[28] इतना ही नहीं पुरी के शंकराचार्य के नेतृत्व में निकले जुलूस को 'जाति के दलित और पीड़ित अंग को ठोकरें मारने' वाले कुकृत्य के रूप में रेखांकित करते हुए उनका आक्रोश फट पड़तता है और वे धर्म की सत्ता को प्रश्नांकित करने लगते हैं, 'फिर क्यों न धर्म का संसार में ह्रास हो, क्यों न रूस वाले धर्म को अफीम का नशा समझें, क्यों न गिरजे ढाए जाएँ

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

और धर्म को कलंकित करने वाले इन स्तम्भों का समाज से बहिष्कार कर दिया जाए।'[29] गांधी जी आडम्बरवादियों के हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते हैं, जबकि प्रेमचन्द सामाजिक बहिष्कार एवं शास्त्रोपजीवी वर्ग के ध्वंस की हद तक जाते हैं। गांधी जी धर्म के प्रति आस्थावान हैं और पक्षधर भी, जबकि प्रेमचन्द की पक्षधरता सामाजिक है और इसी कारण वे अछूतों के पक्ष में खड़े हैं एवं स्वार्थी परोपजीवी ब्राह्मण वर्ग को घृणित मानते हैं। उपर्युक्त उद्‌धृत सम्पादकीय में ही उनका कथन है कि, 'किसी ब्राह्मण महाजन के पास उसी का भाई ब्राह्मण आसामी कर्ज माँगने जाता है, ब्राह्मण महाजन एक पाई भी नहीं देता, उस पर उसका विश्वास नहीं है। उसी ब्राह्मण महाजन के पास एक अछूत आसामी जाता है और बिना किसी लिखा-पढ़ी के रुपए ले आता है। ब्राह्मण को उस पर विश्वास है। वह जानता है, यह बेईमानी नहीं करेगा। ऐसे सत्यवादी, सरल हृदय, भक्ति-परायण लोगों को हम अछूत कहते हैं, उनसे घृणा करते हैं, मगर हमारा विश्वास है, हिन्दू समाज की चेतना जागृत हो गई है, अब वह ऐसे अन्यायों को सहन न करेगा। राष्ट्रों के जीवन का रहस्य उसकी समझ में आ गया है, वह ऐसी नीति का साथ न देगा, जो उसके जीवन की जड़ काट रही है।'[30]

इतना ही नहीं प्रेमचन्द जागरण के 26 दिसमबर 1932 के अंक के सम्पादकीय 'पावन तिथि' में 'मनुष्य मात्र की एकता' पर बल देते हुए इसे ही धर्म का मूल तत्व मानते हैं "... धर्मों का सृष्टि का यही उद्देश्य था। इसी एक व्यवस्था में सारे आध्यात्मिक, नैतिक, दैनिक और मानसिक सिद्धान्त समाविष्ट हो जाते हैं। जब मानव-समाज में छोटे-बड़े, ऊँच-नीच का भेद बढ़ा, एक नए धर्म का उदय हुआ। ... इस तत्व की उपेक्षा करके समाज में शान्ति नहीं रह सकती। या तो किसी एक धर्म की सृष्टि होगी या कोई भयंकर विप्लव हो जाएगा। फ्रैंच-क्रान्ति इसी विषमता की फरियाद थी, रूस की क्रान्ति भी इसी भेदभाव का रुदन थी। मनुष्य-मात्र में जो एक आत्मा व्याप्त है, वह इस विषमता को सहन नहीं कर सकती।"[31]

इसी सम्पादकीय के दो अन्य उपशीर्षक भी हैं, 'धर्म भेद नहीं सिखाता', 'मन्दिर प्रवेश ही इस समस्या को हल करेगा', जो प्रेमचन्द के दलित विमर्श को नयी भंगिमा देता है एवं हिन्दी के दलित आन्दोलन को नयी दिशाएँ भी।

स्वाधीनता के बिना समाज सुधार की परियोजना अधूरी है, उपनिवेशवाद से संघर्ष के बिना सामाजिक क्रान्ति का स्वप्न अधूरा है यही प्रेमचन्द का स्वप्न है, जिसे आज के दलित विमर्श का भी मुख्य मुद्दा होना चाहिए, किन्तु बन नहीं पा रहा है हिन्दी पट्टी का दलित आन्दोलन वर्ण-धर्म की चहाँरदीवारी से निकलकर पुनः उसी में कैद होता दिखाई दे रहा है। प्रेमचन्द ने अछूतों के मंदिर प्रवेश या अस्पृश्यता मिटाने को कभी भी उनकी जिन्दगी की समस्याओं का अन्तिम समाधान नहीं माना, आज का दलित विमर्श इन्हीं गलियों में चक्कर काट रहा है। प्रेमचन्द की धारणा थी कि "असल समस्या आर्थिक है। यदि हम अपने हरिजन भाइयों को उठाना चाहते हैं, तो ऐसे साधन पैदा करने होंगे जो उन्हें उठाने में मदद दें।" (पावन तिथि, 1932) गांधी के अछूतों के उद्धार का फार्मूला नैतिकतावादी एवं आध्यात्मिक है। प्रेमचन्द भी नैतिक एवं आध्यात्मिक चिन्ताओं से प्रस्थान करते हैं। दरअसल इस मोर्चे पर जबकि प्रेमचन्द का दृष्टिकोण अम्बेडकर की तरह ही आर्थिक, मानवाधिकारवादी है। प्रेमचन्द ने पूछा था "हम स्वयं किसी भी तर्क द्वारा यह बात समझ नहीं सकते कि हाड़-मांस की देहवाला, हिन्दू धर्म पर अभिमान करने वाला कोई हरिजन काशी विश्वनाथ या किसी वैसे पवित्र मंदिर में क्यों नहीं प्रवेश पा सकता, जबकि स्थान-स्थान पर मल-मूत्र विसर्जन करने वाल साँड़ मंदिर में दर्शनार्थियों पर सींग चलाता हुआ स्वच्छन्दतापूर्वक घूम सकता है।"[32]

भक्ति आन्दोलन ने छूआछूत वाली सामाजिक व्यवस्था एवं भेद-भाव पर टिकी वर्ण व्यवस्था को आध्यात्मिक, स्तर पर चुनौती देकर दलित विमर्श का पहला चरण प्रारम्भ किया, तो प्रेमचन्द, निराला जैसे अनेक रचनाकारों ने द्वितीय चरण में दलित प्रश्न को मानवाधिकार के प्रश्न के रूप में उठाया। महात्मा गांधी ने कहा था कि "छुआछूत यदि हिन्दू धर्म में हो तो मुझे कहना पड़ेगा कि उसमें शैतानियत भरी हुई है।" प्रेमचन्द इस समय में कबीर की अक्खड़ता भरी शैली में लड़ते ही नहीं हैं, बल्कि इनमें आत्म गौरव, आत्मबोध का भाव भी भरते हैं, अपने अधिकारों के प्रति सचेत भी करते हैं, "यदि आपके देवता ऐसे निर्बल हैं दूसरों के स्पर्श से अपवित्र हो जाते हैं तो उन्हें देवता कहना ही मिथ्या है।" धर्मान्धता, कठमुल्लापन को प्रेमचन्द ने मानव सभ्यता के लिए अभिशाप माना था। उनका कथन है, 'हमारे हिन्दू मन्दिर भोग और प्रसाद, पुरोहित और पंडे, ईश्वर के नाम पर व्यभिचार तथा दुराचार करने वाले स्वार्थी और लोलुप, दर्शन करने जाने वालों से यह पहला प्रश्न करने वाले कि पैसा चढ़ाओ—पामरों के अड्डे मात्र हैं।' इसीलिए प्रेमचन्द के मुक्ति दर्शन का प्रस्थान गांधी के विचारों से जुड़े होने के बावजूद अपनी परिणति में अलग भूमि पर खड़ा है। वे मंदिर प्रवेश को ही दलित मुक्ति का अनिवार्य हिस्सा नहीं मानते। वे आर्थिक स्वाधीनता को भी जरूरी मानते हैं। वे गांधी के समर्थन में 'अस्पृश्यों की महत्त्वाकांक्षा', 'दमन की सीमा', 'महात्मा जी की विजय यात्रा', 'हमारा कर्तव्य', 'हरिजनों के मन्दिर प्रवेश का प्रश्न', 'अस्पृश्यों की महत्त्वाकांक्षा', 'महान तप', 'मंदिर प्रवेश और हरिजन' जैसा सम्पदकीय लिखते हैं, वे उन्हें ही नेता मानते हैं—मुफ्त का माल पुआ खाकर पेट भरने वाला पुरोहित हमारा असली धार्मिक नेता नहीं है, पर अपना हाड़-चाम निचोड़ने वाला गांधी ही भारत का असली धार्मिक नेता है। वह हमारा धार्मिक नेता है और उसके उपवास पूरा होने के दिन हमारे जड़ सनातनी अपने दंभ को फेंक देने का महान कार्य खूबसूरती तथा सफाई के साथ कर सकता है।'[33] किन्तु गांधी जी के प्रति ऐसे विचारों के बावजूद प्रेमचन्द का रास्ता गांधी का रास्ता नहीं है, बल्कि उससे आगे है। प्रेमचन्द गांधी के अछूतोद्धार की समीक्षा भी करते हैं। 8 मई 1933 को गांधी जी ने जब 21 दिन का अनशन शुरू किया, तो 'महान तप' से लिखे सम्पादकीय में लिखते हैं, 'अब भी हम अपने बड़प्पन का, अपनी कुलीनता का ढिंढोरा पीटते फिरेंगे। यह ऊँच-नीच, छोटे-बड़े का भेद हिन्दू जीवन के रोम-रोम में व्याप्त हो गया है। ... हम आदमी पीछे हैं, चौबे या तिवारी पहले। ... यह दंडवत्‌ की समस्या भी आयु के आधार पर या अन्य किसी आधार पर हल करनी होगी। उसका साम्प्रदायिक आधार नष्ट करना होगा। ... हमें इन छोटे-छोटे भेद-पोषक साधनों का संस्कार करना होगा, उन्हें उस अग्निकुंड में डालना होगा, जो महात्मा गांधी ने अपने तेज से प्रज्वलित किया है। एक दिन झाड़ू हाथ में लेकर सड़कों पर तमाशा कर देने से यह अहंकार न मिटेगा, जो हरिजनों के अछूतपन का मुख्य कारण है। इसकी गहरी जड़ों को खोदकर समाज से निकालना होगा।'[34] अन्त तक आते-आते प्रेमचन्द अछूत समस्या की हकीकत समझने लगे थे और

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

गाँधी जी के अछूतोद्धार की सीमा भी देखने लगे थे। फिलहाल ये कथन महत्त्वपूर्ण हैं —

• हमारे पास कलन्त आश्रम, जाफराबाद के हरिजन-सेवक श्री हरिजनदास

कलन्त का एक पत्र आया है जिसमें वे लिखते हैं कि 'आज मैं वर्षों से हरिजनों की सेवा में ही अपना प्राण लगा रहा हूँ। मेरा यह अनुभव है कि हरिजन मन्दिर-प्रवेश के लिए इतने उत्सुक नहीं हैं जितना अपनी आर्थिक दशा सुधारने के लिए। वे चाहते हैं कि अपने गृह-उद्योग द्वारा स्वतन्त्र हो जाएँ। उनकी माली हालत सुधरे। इसलिए हम चाहते हैं कि मशीनरी की उत्पत्ति पर कर लगा दिया जाए। गृह-उद्योग तभी पनपेगा और हम तभी सुखी हो सकेंगे।'

• "... हरिजनों के इन उदार विचारों के लिए हम उन्हें बधाई देते हैं। फिर भी, वे चाहें या न चाहें, हम उन्हें मन्दिर प्रवेश का अधिकार देना ही चाहते हैं। रह गई गृह-उद्योग की बात। इस विषय में उनके विचारों का हम समर्थन करते हैं। जब उनके पास पैसा होगा तो भोज-भट्टू ब्राह्मण और भिक्षु-विप्र भी उनको उन्नत मानने लगेंगे।"[35]

प्रेमचन्द का महत्त्व यह है कि सामाजिक, धार्मिक कारणों के साथ-साथ आर्थिक कारणों को अस्पृश्यता का बड़ा कारण मानते हैं। मार्च 1933 में 'साहित्य की प्रगति' शीर्षक भाषण उल्लेखनीय है जिसमें आर्थिक सम्बन्धों के विषय में उनके विचार क्रान्तिकारी हैं। उनका कथन है—

'अन्त में आदम जाति में इन दशाओं के प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न हो गया। मनुष्य की आत्मा इन निरर्थक ही नहीं, घातक बन्धनों को मकड़ी के जाले की भाँति तोड़-फोड़ करके निर्मल, स्वच्छ, मुक्त आकाश और वायु मे विचरण करने के लिए आतुर हो उठी। बीच-बीच में कितनी ही बार ऐसे विद्रोह उठे। हमारे जितने मत हैं, वह सब इसी विद्रोह के स्मारक हैं, किन्तु उन विद्रोहों में कलह की जो मुख्य वस्तु थी, वह ज्यों-की-त्यों बनी रही। सम्पत्ति में हाथ लगाने का या तो किसी को साहस ही नहीं हुआ या किसी को सूझी ही नहीं। जो इन सारी दुर्व्यवस्थाओं का मूल था वह इतने सौम्य वेश में धर्म और विद्या और नीति के आवरण में महान बना हुआ बैठा था, कि किसी को उसकी ओर सन्देह करने की भी प्रेरणा न हुई। हालाँकि उसी के इशारे और सहयोग से समाज पर नित नए बन्धन लगाए जा रहे हैं। यह बड़े-बड़े न्यायालय और यह साम्राज्यवाद और ये बड़े-बड़े व्यापार के केन्द्र उसी के रचे हुए खिलौने हैं। ये भिन्न-भिन्न मत उसके खिलौनों से सिवा और क्या हैं। यही जाति-पाँत, यह ऊँच-नीच का भेद उसी की छोड़ी हुई फुलझड़ियाँ हैं। यह चकले, जो मानव-समाज के कोढ़ हैं, उसके क्रूर विनोद हैं। ये हमारी असंख्य विधवाएँ, ये हमारे लाखों मजूर जो पशुओं की भाँति जीवन काट रहे हैं, उसी भानमती के छू-मन्तर की विभूतियाँ हैं।'[36]

यहाँ प्रेमचन्द पूरे साहस के साथ यह स्वीकार करते हैं कि अछूत प्रथा, सामाजिक वैमनस्य, राष्ट्रीय पतन का मुख्य कारणा व्यक्तिगत सम्मति ही है। कँवल भारती जैसे दलित-विचारक-लेखक भी हैं, जिन्होंने इसी भूमिका के कारण प्रेमचन्द के

दाय को स्वीकार किया। इनका कथन है, 'क्या प्रेमचन्द वास्तव में दलित-विरोधी थे? दस साल पहले उनकी 'कफन' कहानी को लेकर मैं इसी धारणा का हो गया था। पर, जैसे-जैसे मैं उनकी अन्य कहानियाँ, उपन्यास और लेख पढ़ता गया, मैं अपनी धारणा से बाहर आने लगा। मैंने अनुभव किया कि 1936 तक के काल-खण्ड में प्रेमचन्द अकेले लेखक हैं जिनसे साहित्य में दलित-विमर्श की शुरूआत होती है।'[37]

प्रेमचन्द को अकेले लेखक हैं जिनसे साहित्य में दलित-विमर्श की शुरूआत होती है। प्रेमचन्द को अस्वीकार करने का एक बड़ा आधार 'स्वानुभूति' का प्रश्न है, किन्तु कँवल भारती ने प्रेमचन्द के सम्बध में इस प्रतिमान को खारिज कर दिया, यह प्रेमचन्द का महत्त्व है, उनकी रचनात्मक-वैचारिक ताकत ही है। अन्ततः कँवल भारती के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'हम अक्सर सहानुभूति और स्व-अनुभूति की बात करते हैं और बड़ी आसानी से दलितों के बारे में गैर दलित लेखकों के साहित्य को सहानुभूतिपरक कहकर खारिज कर देते हैं, लेकिन प्रेमचन्द को पढ़ते समय मैंने अनुभव किया कि यदि सहानुभूति न हो तो समस्या को समझना भी मुश्किल होता है। प्रेमचन्द की कहानियों और उपन्यासों में दलितों के प्रति सहानुभूति का स्तर सिर्फ दया-भाव पर आधारित नहीं है। दया भाव समस्या को नहीं उठाता, बल्कि वह उसे बनाए रखने का यत्न होता है। प्रेमचन्द का दलित विमर्श इस यत्न से मुक्त है। वे दलित-समस्या की मुक्ति में दलितों के पक्ष में खड़े नजर आते हैं।'[38]

संदर्भ सूची

1. प्रेमचन्दः सामन्त का मुंशी, पृ. 80
2. दलित साहित्य की अवधारणा और प्रेमचन्द, सं. सदानन्द शाही, पृ. 112
3. दलित साहित्य वार्षिकी, 2005, पृ. 35
4. प्रेमचन्दः विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, पृ. 481
5. 19 सितम्बर 1932, जागरण में 'गांधी जी का तप' विविध प्रसंग, पृ. 440
6. 14 नवम्बर 1932, जागरण, 'हरिजनों के मन्दिर प्रवेश का प्रश्न', विविध प्रसंग, 446
7. प्रेमचन्द विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवक्ता, मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, वीरेन्द्र यादव का लेख, पृ. 485
8. विविध प्रसंग, पृ. 476
9. वही
10. दलित विमर्श की भूमिका, पृ. 128
11. प्रेमचन्दः विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता,मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पृ. 486
12. प्रेमचन्द रचनावली-8, पृ. 141
13. रचनावली-8, पृ. 105
14. महान तप-तप, जागरण, 15 मई 1933 में प्रकाशित रचनावली-8, पृ. 320
15. वही,
16. रचनावली-8, पृ. 160
17. वही
18. प्रेमचन्दः हमारे समकालीन, रमेश कुन्तल मेघ, पृ. 99
19. शम्भुनाथ कथा देश, जुलाई 03, पृ. 33
20. वसुधा, अंक 56, पृ. 2977
21. अम्बेडकरवादी साहित्य का समाजशास्त्र, पृ. 270-271
22. वही, पृ. 486
23. विविध प्रसंग, पृ. 374
24. प्रेमचंदः विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, पृ. 464

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/

25. वही, पृ. 465
26. वही, पृ. 466
27. राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, पृ. 144
28. प्रेमचन्द के विचार भाग-1, पृष्ठ 431
29. विविध प्रसंग-2, पृ. 447
30. प्रेमचंदप्रेमचन्दः विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, पृ. 469
31. वही, पृ. 470
32. प्रेमचन्द रचनावली-8, मंदिर प्रवेश और हरिजन, 1933, पृ. 332
33. वही
34. जागरण का सम्पादकीय, महान तप शीर्षक से प्रेमचन्द रचनावली-8, पृ. 320
35. जनवरी 1933 'जागरण' का सम्पादकीय, 'अस्पृश्यों की महत्त्वाकांक्षा', प्रेमचन्दः विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, पृ. 471
36. वही, पृ. 471-472
37. कथाक्रम, जुलाई-सितम्बर 2005

Creative Commons (CC) License

This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY 4.0) license. This license permits unrestricted use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original author and source are credited.

© 2024 प्रो दीपक प्रकाश त्यागी. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC BY NC ND). https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/